

## यमगीता-( २ )

[ एक यमगीता अग्निमहापुराणके अन्तर्गत भी प्राप्त होती है। यह गीता यमराजद्वारा नचिकेताके प्रति कही गयी है। इस यमगीताकी केन्द्रीय विषयवस्तु योगदर्शन है। इसके प्रारम्भमें प्राचीन कालके विभिन्न मनीषियों यथा— पंचशिख, जनक, जैगीषव्य, देवल आदिके मतानुसार मनुष्यके परमकल्याणके साधन बताये गये हैं, जिनके द्वारा आत्मचिन्तन तथा अनासक्त भावसे शास्त्रोक्त कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती है। इसके बाद इसमें योगमार्गका वर्णन है; विशेषकर यम-नियमके द्वारा मनका निग्रह करते हुए समाधि-अवस्था प्राप्त करनेका उपाय बताया गया है। जिससे जीव ब्रह्मभावमें स्थित हो जाता है, यह सारगर्भित एवं तात्त्विक यमगीता यहाँ सानुवाद प्रस्तुत की जा रही है— ]

अग्निरुवाच

यमगीतां प्रवक्ष्यामि उक्ता या नाचिकेतसे।  
पठतां शृण्वतां भुक्त्यै मुक्त्यै मोक्षार्थिनां सताम् ॥ १ ॥

अग्निदेव कहते हैं—ब्रह्मन्! अब मैं यमगीताका वर्णन करूँगा, जो यमराजके द्वारा नचिकेताके प्रति कही गयी थी। यह पढ़ने और सुननेवालोंको भोग प्रदान करती है तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले सत्पुरुषोंको मोक्ष देनेवाली है ॥ १ ॥

यम उवाच

आसनं शयनं यानपरिधानगृहादिकम्।  
वाञ्छत्यहोऽतिमोहेन सुस्थिरं स्वयमस्थिरः ॥ २ ॥

यमराजने कहा—अहो! कितने आश्चर्यकी बात है कि मनुष्य अत्यन्त मोहके कारण स्वयं अस्थिरचित्त होकर आसन, शय्या, वाहन, परिधान (पहननेके वस्त्र आदि) तथा गृह आदि भोगोंको सुस्थिर मानकर प्राप्त करना चाहता है ॥ २ ॥

भोगेषु शक्तिः सततं तथैवात्मावलोकनम् ।

श्रेयः परं मनुष्याणां कपिलोद्गीतमेव हि ॥ ३ ॥

कपिलजीने कहा है—‘भोगोंमें आसक्तिका अभाव तथा सदा ही आत्मतत्त्वका चिन्तन—यह मनुष्योंके परमकल्याणका उपाय है’ ॥ ३ ॥

सर्वत्र समदर्शित्वं निर्ममत्वमसङ्गता ।

श्रेयः परं मनुष्याणां गीतं पञ्चशिखेन हि ॥ ४ ॥

‘सर्वत्र समतापूर्ण दृष्टि तथा ममता और आसक्तिका न होना—यह मनुष्योंके परमकल्याणका साधन है’—यह आचार्य पंचशिखका उद्गार है ॥ ४ ॥

आगर्भजन्मबाल्यादिवयोऽवस्थादिवेदनम् ।

श्रेयः परं मनुष्याणां गङ्गाविष्णुप्रगीतकम् ॥ ५ ॥

‘गर्भसे लेकर जन्म और बाल्य आदि वय तथा अवस्थाओंके स्वरूपको ठीक-ठीक समझना ही मनुष्योंके परमकल्याणका हेतु है’—यह गंगा-विष्णुका गान है ॥ ५ ॥

आध्यात्मिकादिदुःखानामाद्यन्तादिप्रतिक्रिया ।

श्रेयः परं मनुष्याणां जनकोद्गीतमेव च ॥ ६ ॥

‘आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख आदि-अन्तवाले हैं अर्थात् ये उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं, अतः इन्हें क्षणिक समझकर धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिये, विचलित नहीं होना चाहिये—इस प्रकार उन दुःखोंका प्रतिकार ही मनुष्योंके लिये परमकल्याणका साधन है’—यह महाराज जनकका मत है ॥ ६ ॥

अभिन्नयोर्भेदकरः प्रत्ययो यः परात्मनः ।

तच्छान्तिपरमं श्रेयो ब्रह्मोद्गीतमुदाहृतम् ॥ ७ ॥

‘जीवात्मा और परमात्मा वस्तुतः अभिन्न (एक) हैं, इनमें जो भेदकी प्रतीति होती है, उसका निवारण करना ही परमकल्याणका

हेतु है'—यह ब्रह्माजीका सिद्धान्त है ॥ ७ ॥

कर्तव्यमिति यत्कर्म ऋग्यजुःसामसंज्ञितम् ।

कुरुते श्रेयसे सङ्गान् जैगीषव्येण गीयते ॥ ८ ॥

जैगीषव्यका कहना है कि 'ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदमें प्रतिपादित जो कर्म हैं, उन्हें कर्तव्य समझकर अनासक्तभावसे करना श्रेयका साधन है' ॥ ८ ॥

हानिः सर्वविधित्सानामात्मनः सुखहेतुकी ।

श्रेयः परं मनुष्याणां देवलोद्गीतमीरितम् ॥ ९ ॥

'सब प्रकारकी विधित्सा (कर्मारम्भकी आकांक्षा)—का परित्याग आत्माके सुखका साधन है, यही मनुष्योंके लिये परम श्रेय है'—यह देवलका मत बताया गया है ॥ ९ ॥

कामत्यागात्तु विज्ञानं सुखं ब्रह्म परं पदम् ।

कामिनां न हि विज्ञानं सनकोद्गीतमेव तत् ॥ १० ॥

'कामनाओंके त्यागसे विज्ञान, सुख, ब्रह्म एवं परमपदकी प्राप्ति होती है। कामना रखनेवालोंको ज्ञान नहीं होता'—यह सनकादिकोंका सिद्धान्त है ॥ १० ॥

प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च कार्यं कर्मपरोऽब्रवीत् ।

श्रेयसां श्रेय एतद्धि नैष्कर्म्यं ब्रह्म तद्धरिः ॥ ११ ॥

दूसरे लोग कहते हैं कि प्रवृत्ति और निवृत्ति—दोनों प्रकारके कर्म करने चाहिये। परंतु वास्तवमें नैष्कर्म्य ही ब्रह्म है, वही भगवान् विष्णुका स्वरूप है—यही श्रेयका भी श्रेय है ॥ ११ ॥

पुमांश्चाधिगतज्ञानो भेदं नाप्नोति सत्तमः ।

ब्रह्मणा विष्णुसंज्ञेन परमेणाव्ययेन च ॥ १२ ॥

जिस पुरुषको ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है, वह सन्तोंमें श्रेष्ठ है, वह अविनाशी परब्रह्म विष्णुसे कभी भेदको नहीं प्राप्त होता ॥ १२ ॥

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं सौभाग्यं रूपमुत्तमम्।  
तपसा लभ्यते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति ॥ १३ ॥

ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता, सौभाग्य तथा उत्तम रूप तपस्यासे उपलब्ध होते हैं। इतना ही नहीं, मनुष्य अपने मनसे जो-जो वस्तु पाना चाहता है, वह सब तपस्यासे प्राप्त हो जाती है ॥ १३ ॥

नास्ति विष्णुसमं ध्येयं तपो नानशनात्परं।  
नास्त्यारोग्यसमं धन्यं नास्ति गङ्गासमा सरित् ॥ १४ ॥

विष्णुके समान कोई ध्येय नहीं है, निराहार रहनेसे बढ़कर कोई तपस्या नहीं है, आरोग्यके समान कोई बहुमूल्य वस्तु नहीं है और गंगाजीके तुल्य दूसरी कोई नदी नहीं है ॥ १४ ॥

न सोऽस्ति बान्धवः कश्चिद्विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुम्।  
अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे ॥ १५ ॥

जगद्गुरु भगवान् विष्णुको छोड़कर दूसरा कोई बान्धव नहीं है। नीचे-ऊपर, आगे, देह, इन्द्रिय, मन तथा मुख—सबमें और सर्वत्र भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं ॥ १५ ॥

इत्येवं संस्मरन् प्राणान् यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत्।  
यत्तद् ब्रह्म यतः सर्वं यत्सर्वं तस्य संस्थितम् ॥ १६ ॥

अग्राह्यकमनिर्देश्यं सुप्रतिष्ठञ्च यत्परम्।  
परापरस्वरूपेण विष्णुः सर्वहृदि स्थितः ॥ १७ ॥

यज्ञेशं यज्ञपुरुषं केचिदिच्छन्ति तत्परम्।  
केचिद्विष्णुं हरं केचित् केचिद् ब्रह्माणमीश्वरम् ॥ १८ ॥

इन्द्रादिनामभिः केचित् सूर्यं सोमञ्च कालकम्।  
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगद्विष्णुं वदन्ति च ॥ १९ ॥

इस प्रकार भगवान्का चिन्तन करते हुए जो प्राणोंका परित्याग करता है, वह साक्षात् श्रीहरिके स्वरूपमें मिल जाता है। वह जो

सर्वत्र व्यापक ब्रह्म है, जिससे सबकी उत्पत्ति हुई है, जो सर्वस्वरूप है तथा यह सब कुछ जिसका संस्थान (आकारविशेष) है, जो इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं है, जिसका किसी नाम आदिके द्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता, जो सुप्रतिष्ठित एवं सबसे परे है, उस परापर ब्रह्मके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही सबके हृदयमें विराजमान हैं। वे यज्ञके स्वामी तथा यज्ञस्वरूप हैं; उन्हें कोई तो परब्रह्मरूपसे प्राप्त करना चाहते हैं, कोई विष्णुरूपसे, कोई शिवरूपसे, कोई ब्रह्मा और ईश्वररूपसे, कोई इन्द्रादि नामोंसे तथा कोई सूर्य, चन्द्रमा और कालरूपसे उन्हें पाना चाहते हैं। ब्रह्मासे लेकर कीटतक सारे जगत्को विष्णुका ही स्वरूप कहते हैं ॥ १६—१९ ॥

**स विष्णुः परमं ब्रह्म यतो नावर्तते पुनः।**

**सुवर्णादिमहादानपुण्यतीर्थावगाहनैः**

**॥ २० ॥**

**ध्यानैर्व्रतैः पूजया च धर्मश्रुत्या तदाप्नुयात्।**

वे भगवान् विष्णु परब्रह्म परमात्मा हैं, जिनके पास पहुँच जानेपर (जिन्हें जान लेने या पा लेनेपर) फिर वहाँसे इस संसारमें नहीं लौटना पड़ता। सुवर्ण-दान आदि बड़े-बड़े दान तथा पुण्य-तीर्थोंमें स्नान करनेसे, ध्यान लगानेसे, व्रत करनेसे, पूजासे और धर्मकी बातें सुनने (एवं उनका पालन करने)-से उनकी प्राप्ति होती है ॥ २० ॥

**आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥ २१ ॥**

**बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।**

**इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांश्चेषु गोचरान् ॥ २२ ॥**

**आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।**

आत्माको 'रथी' समझो और शरीरको 'रथ'। बुद्धिको 'सारथि' जानो और मनको 'लगाम'। विवेकी पुरुष इन्द्रियोंको 'घोड़े' कहते हैं और विषयोंको उनके 'मार्ग' तथा शरीर, इन्द्रिय और मनसहित आत्माको 'भोक्ता' कहते हैं ॥ २१—२२ ॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ॥ २३ ॥

न सत्पदमवाप्नोति संसारञ्चाधिगच्छति ।

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ॥ २४ ॥

स तत्पदमवाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ।

जो बुद्धिरूप सारथि अविवेकी होता है, जो अपने मनरूपी लगामको कसकर नहीं रखता, वह उत्तमपद परमात्माको नहीं प्राप्त होता, संसाररूपी गर्तमें गिरता है। परंतु जो विवेकी होता है और मनको काबूमें रखता है, वह उस परमपदको प्राप्त होता है, जिससे वह फिर जन्म नहीं लेता ॥ २३-२४ ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ॥ २५ ॥

सोऽध्वानं परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।

जो मनुष्य विवेकयुक्त बुद्धिरूप सारथिसे सम्पन्न और मनरूपी लगामको काबूमें रखनेवाला होता है, वही संसाररूपी मार्गको पार करता है, जहाँ विष्णुका परमपद है ॥ २५ ॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥ २६ ॥

मनसस्तु परा बुद्धिः बुद्धेरात्मा महान् परः ।

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥ २७ ॥

पुरुषान् परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ।

इन्द्रियोंकी अपेक्षा उनके विषय पर हैं, विषयोंसे परे मन है, मनसे परे बुद्धि है, बुद्धिसे परे महान् आत्मा (महत्तत्त्व) है, महत्तत्त्वसे परे अव्यक्त (मूलप्रकृति) है और अव्यक्तसे परे पुरुष (परमात्मा) है। पुरुषसे परे कुछ भी नहीं है, वही सीमा है, वही परमगति है ॥ २६-२७ ॥

एषु सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ॥ २८ ॥

दृश्यते त्वग्रथा बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञः तद्यच्छेज्ज्ञानमात्मनि ॥ २९ ॥

**ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेच्छान्त आत्मनि ।**

सम्पूर्ण भूतोंमें छिपा हुआ यह आत्मा प्रकाशमें नहीं आता । सूक्ष्मदर्शी पुरुष अपनी तीव्र एवं सूक्ष्म बुद्धिसे ही उसे देख पाते हैं । विद्वान् पुरुष वाणीको मनमें और मनको विज्ञानमयी बुद्धिमें लीन करे । इसी प्रकार बुद्धिको महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्वको शान्त आत्मामें लीन करे ॥ २८-२९<sup>१</sup>/२ ॥

**ज्ञात्वा ब्रह्मात्मनोर्योगं यमाद्यैर्ब्रह्म सद्भवेत् ॥ ३० ॥**

**अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रही ।**

**यमाश्च नियमाः पञ्च शौचं सन्तोषसत्तपः ॥ ३१ ॥**

**स्वाध्यायेश्वरपूजा च आसनं पद्मकादिकम् ।**

**प्राणायामो वायुजयः प्रत्याहारः स्वनिग्रहः ॥ ३२ ॥**

यम-नियमादि साधनोंसे ब्रह्म और आत्माकी एकताको जानकर मनुष्य सत्स्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरीका अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संग्रह न करना)—ये पाँच ‘यम’ कहलाते हैं । ‘नियम’ भी पाँच ही हैं—शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), सन्तोष, उत्तम तप, स्वाध्याय और ईश्वरपूजा । ‘आसन’ बैठनेकी प्रक्रियाका नाम है, उसके ‘पद्मासन’ आदि कई भेद हैं । प्राणवायुको जीतना ‘प्राणायाम’ है । इन्द्रियोंका निग्रह ‘प्रत्याहार’ कहलाता है ॥ ३०—३२ ॥

**शुभे ह्येकत्र विषये चेतसो यत् प्रधारणम् ।**

**निश्चलत्वात्तु धीमद्भिर्धारणा द्विज कथ्यते ॥ ३३ ॥**

**पौनःपुन्येन तत्रैव विषयेष्वेव धारणा ।**

**ध्यानं स्मृतं समाधिस्तु अहं ब्रह्मात्मसंस्थितिः ॥ ३४ ॥**

ब्रह्मन्! एक शुभ विषयमें जो चित्तको स्थिरतापूर्वक स्थापित करना होता है, उसे बुद्धिमान् पुरुष ‘धारणा’ कहते हैं । एक ही विषयमें बारम्बार धारणा करनेका नाम ‘ध्यान’ है । ‘मैं ब्रह्म हूँ’—इस प्रकारके

अनुभवमें स्थिति होनेको 'समाधि' कहते हैं ॥ ३३-३४ ॥

घटध्वंसाद्यथाकाशमभिनं नभसा भवेत् ।

मुक्तो जीवो ब्रह्मणैवं सद्ब्रह्म ब्रह्म वै भवेत् ॥ ३५ ॥

आत्मानं मन्यते ब्रह्म जीवो ज्ञानेन नान्यथा ।

जीवो ह्यज्ञानतत्कार्यमुक्तः स्यादजरामरः ॥ ३६ ॥

जैसे घड़ा फूट जानेपर घटाकाश महाकाशसे अभिन्न (एक) हो जाता है, उसी प्रकार मुक्त जीव ब्रह्मके साथ एकीभावको प्राप्त होता है—वह सत्स्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है। ज्ञानसे ही जीव अपनेको ब्रह्म मानता है, अन्यथा नहीं। अज्ञान और उसके कार्यसे मुक्त होनेपर जीव अजर-अमर हो जाता है ॥ ३५-३६ ॥

अग्निरुवाच

वसिष्ठ यमगीतोक्ता पठतां भुक्तिमुक्तिदा ।

आत्यन्तिको लयः प्रोक्तो वेदान्तब्रह्मधीमयः ॥ ३७ ॥

अग्निदेव कहते हैं—वसिष्ठ! यह मैंने यमगीता बतलायी है। इसे पढ़नेवालोंको यह भोग और मोक्ष प्रदान करती है। वेदान्तके अनुसार सर्वत्र ब्रह्मबुद्धिका होना 'आत्यन्तिक लय' कहलाता है ॥ ३७ ॥

॥ इति श्रीअग्निमहापुराणे यमगीता सम्पूर्णा ॥

